ISSN- 2231-6566

मीडिया जगत

(द्विभाषिक–अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका)

MEDIA JAGAT

(Bilingual-Biannual Research Journal)

प्रकाशक

पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी–221002

Deptt. of Journalism and Mass Communication

Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi-221002

मीडिया जगत

(द्विभाषिक अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका)

MEDIA JAGAT

(BILINGUAL-BIANNUAL RESEARCH JOURNAL)

A peer reviewed research journal

प्रकाशक

पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,

वाराणसी–221002 (उ0प्र0)

फोन नं0–0542–222543

©सर्वाधिकार

पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग

संस्करण

संयुक्तांक–2012

सहयोग राशि

विद्यार्थियों के लिए– रू0 75.00

संस्थाओं एवं अन्य के लिए– रू0 100.00

अक्षर संयोजन

गौतम प्रिण्टिंग वर्क्स

सम्पर्क सूत्र–9795970510

मुद्रक

प्रेस एवं प्रकाशन विभाग

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी–221002 (उ0प्र0)

अनुक्रमणिका (Content List)

क्रमांक (S.No.)	शोध पत्र (Research Paper)	लेखक (Author)	पृष्ठ (Page)
1.	समकालीन राजनीतिक परिदृश्य और जनमाध्यम	प्रो0 अनिल कुमार उपाध्याय	1–5
2.	आपात उपबन्ध और प्रेस	डॉ0 विनोद कुमार सिंह	6–14
3.	कला कौशल एवं शिक्षा का विकास और मीडिया	डॉ0गिरिजाशंकर शर्मा एवं नन्दबहादुर	15–22
4.	कार्टूनों का बाल विकास पर प्रभाव	डॉ0 बंशीधर पाण्डेय एवं डॉ0 निमिषा गुप्ता	23–27
5.	सिनेमा, साहित्य और संस्कृति	डॉ0 अर्चना उपाध्याय	28–32
6.	जनलोकपाल आन्दोलन के उभार में मीडिया की भूमिका	सुमीत कुमार द्विवेदी	33–46
7.	**Popularity of Hindi Television Serials among Urban Women, With Special Reference to Silchar Town**	Dr.Mita Das and Prof. (Dr.) G. P. Pandey	47–61
8.	**The Lense of Gender Reflections in Contemporary Hindi Cinema**	Dr. Prabha Shanker Mishra	62–78
9.	**Effective Communication Practices in Insurance Sector: An Overview**	Dr.Paromita Das and Arindom Shome Purkayastha	79–85
10.	**Role of Media in the Contemporary Society: A Detailed Study**	Dr. Suresh Chandra Nayak	86–101

11.	**Understanding the interplay between Human Rights and Mass Media in the present times**	Deepak Upadhyaya & Sunayan Bhattacharjee	102–123
12.	**Reporting On Women Issues A Comparative Case Study For The Month Of December 2012 And January 2013 In Newspapers Of Hindustan Times And The Tribune (Jalandhar)**	Ruchi Singh Gaur	124–136
13.	**Paradigm shift in Traditional folk media: An impact of Globalisation**	Amit Malaviya	137–143
14.	जनसम्पर्क एवं पत्रकारिताः सात दिवसीय कार्यशाला रिपोर्ट	डॉ0 प्रभाशंकर मिश्रा	144–147

***

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति

अर्चना उपाध्याय*

"सिनेमा, कला का वह सशक्त माध्यम है जो अपने दर्शकों को किसी खास विषय–वस्तु पर आधारित कथा को दिखाता है, बताता है और मनोरंजन करते हुए दर्शकों के हृदय में गहरे उतर जाने की अभूतपूर्व क्षमता रखता है। सिनेमा, कहानी कहने का एक प्रभावशाली माध्यम है। अन्य कई कलाओं की तरह सिनेमा भी देश, काल, सामाजिक संरचना और व्यक्ति की समस्याओं से सीधा जुड़ा रहता है। सिनेमा, कला की कई विधाओं जैसे– साहित्य, चित्रकला, संगीत, नृत्य आदि का मिला–जुला रूप होता है। अर्थात् सिनेमा समग्रता का दूसरा नाम है।"

सिनेमा का सबसे सशक्त बिन्दु यह है कि इसे अशिक्षित और अल्पशिक्षित सभी तरह के दर्शक देख–समझ सकते हैं। सिनेमा देखने के लिए अक्षर ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। हमारे देश में आज भी अशिक्षितों की संख्या करोड़ों में है। ऐसे दर्शक–वर्ग के लिए सिनेमा सबसे कारगर तथा उपयोगी माध्यम है। सिनेमा के द्वारा हमारी संस्कृति, गीत, संगीत, साहित्य, लोक कथाएँ, धार्मिक गाथाएँ सामान्य जन तक आसानी से पहुँच जाती है।

हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार मुंशी 'प्रेमचन्द्र' के आखिरी उपन्यास 'गोदान' (1935) पर एक सफल फिल्म बनी। इस फिल्म में किसान–जीवन से जुड़ी समस्याओं को बखूबी फिल्माया गया है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। किसान और जमीन हमारी भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। गरीब किसान की बेहाली को उकेरकर उसे जनसाधारण तक पहुँचाना, यह फिल्म द्वारा सहज ही हो गया।

'भगवतीचरण वर्मा' कृत 'चित्रलेखा' उपन्यास पर सन् 1941 में केदार शर्मा ने

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी–विभाग, श्यामलाल सांध्य महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

 ISSN- 2231-6566

इसी नाम से एक फिल्म बनाई इस फिल्म में पाप और पुण्य का दार्शनिक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। केदारशर्मा द्वारा ही सन् 1964 में दोबारा इस फिल्म का निर्माण किया गया। किन्तु, दूसरी बार कथानक तथा चरित्रों के साथ न्याय नहीं हो पाया। पहली फिल्म अधिक सशक्त तरीके से सांस्कृतिक मूल्यों को दर्शाती है।

'शरतचन्द्र' के उपन्यास को आधार बनाकर 'परिणीता' फिल्म बनाई गई। इसमें मध्यमवर्ग में स्त्री के कर्तव्य–अकर्तव्य और उसके मनोभावों को चित्रित किया गया है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री की भूमिका को देखने का प्रयत्न हुआ है।

'विभूतिभूषण बंधोपाध्याय' के उपन्यास पर आधारित 'पथेर पांचाली' नवयथार्थवादी फिल्मों में उल्लेखनीय नाम है। 'सत्यजित रे' ने इसमें बंगाल के एक गाँव में रहने वाले ब्राह्मण परिवार की कथा को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से जीवंत किया है।

सुविख्यात कथाकार 'फणीश्वरनाथ रेणु' द्वारा रचित 'तीसरी कसम' को आधार में रखकर, सन् 1966 में फिल्मकार 'शैलेन्द्र' ने एक सफल फिल्म का निर्माण किया। 'तीसरी कसम' में हिन्दी भाषा की निकटतम् बोलियों–भोजपुरी, मैथिली आदि का प्रयोग हुआ था। यह हिन्दी की पहली फिल्म थी, जिसमें हिन्दी की क्षेत्रीय बोलियों को महत्व मिला।

इस श्रृंखला में अनेक फिल्मों के नाम जुड़े हैं जो कि विभिन्न साहित्यिक कृतियों के कथानकों पर फिल्माए गए हैं और उन्हें जनसामान्य के बीच लोकप्रियता मिली। वनफूल के उपन्यास 'भुवनशोम', नारायण सान्याल द्वारा रचित उपन्यास 'सत्यकाम', मोहन राकेश की लघुकथा 'उसकी रोटी', रमेश बक्षी के उपन्यास 'अठारह सूरज के पौधे' ('27 डाउन' नाम से फिल्म बनी), मिर्जा हादी रूसवा के चर्चित उपन्यास पर बनी फिल्म 'उमराव जान' आदि अनेक सफल फिल्मों का उल्लेख किया जा सकता है। उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि साहित्य और सिनेमा का साथ चोली–दामन की तरह है तथा संस्कृति भी अनायास उससे जुड़ी हुई है। सिनेमा अपने आरंभिक दौर से ही साहित्य और संस्कृति का वाहक बना। सिनेमा के द्वारा साहित्य और संस्कृति में गतिशीलता आई।

स्पष्ट है कि सिनेमा कहानी कहने की एक कला है। कला और साहित्य, मनुष्य के लिए अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हैं। वह अभिव्यक्ति मनुष्य के संस्कारों की भी हो सकती है और उसके चेतना के विकास से भी परिपुष्ट हो सकती है। "किसी भी देश की कला और साहित्य, उस देश की संस्कृति का आईना होता है।"[2]

साहित्य को लोकप्रिय होने के लिए किसी न किसी माध्यम का सहारा लेना पड़ता है। बिना माध्यम का सहारा लिए वह किसी एक व्यक्ति (सोचने या लिखने वाले) तक ही सीमित रह जाएगा। भाषा, गीत, संगीत, नाटक, लेखन, चित्रकला, सिनेमा जैसे माध्यमों के द्वारा ही वह अभिव्यक्ति की ओर अग्रसर होगा। साहित्य तथा संस्कृति दोनों ही सिनेमा के माध्यम से सहज तथा सुलभ हुए हैं। अपितु आज स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि सांस्कृतिक गतिविधियाँ तीव्र हुई हैं। सिनेमा ने स्थान, समय और धर्म की सीमाओं को ध्वस्त किया है। यह एक शुभ संकेत है। विभिन्न जातियों तथा धर्मों के भेदभाव को भुलाकार इसने समाज को जोड़ने का काम किया है। हालाँकि इसके अपवाद भी हैं। लेकिन, एक हद तक हम फिल्मी संस्कृति को आत्मसात कर सभ्य और आधुनिक हुए हैं।

सिनेमा, साहित्य को एक संस्कृति को उसकी वैयक्तिकता, स्थानीयता और संकीर्णता से ऊपर ले जाकर उसे सार्वभौमिक बनाती है। भाषा, खान–पान, रहन–सहन, तीज–त्योहार, पहनावा यहाँ तक कि विचारों का भी स्वाभाविक आवागमन सिनेमा के माध्यम से तेजी से हो रहा है। हिन्दी सिनेमा में सिर्फ हिन्दी भाषा ही नहीं बल्कि, उसके साथ अनेक देशी तथा विदेशी भाषाओं का प्रयोग बढ़ रहा है। अनेक विदेशी भाषा की फिल्मों का हिन्दी में 'रीमेक' या 'डब' हो रहा है। जो विदेशी (विशेषकर अंग्रेजी) साहित्य आम हिन्दी–भाषी की समझ से परे है, उस पर हिन्दी में फिल्में बन रहीं हैं। ठीक इसी तरह हिन्दी भाषा का साहित्य तथा सिनेमा अन्य भाषा–भाषियों द्वारा पढ़ा, देखा और सराहा जा रहा है। रामायण, महाभारत जैसी धार्मिक सिनेमा के माध्यम से जनसामान्य तक आसानी से पहुँच रही है। सिनेमा के द्वारा संस्कृतियों का आदान–प्रदान हो रहा है। प्रसार तथा आदान–प्रदान का यही क्रम, जीवन के सभी क्षेत्रों में दिखाई दे रहा है।

इसी तरह हिन्दी भाषा के संदर्भ में भी कुछ बातें निकल कर आती हैं। सिनेमा की हिन्दी अब खास सिनेमाई–बोली या फिर 'हिंग्लिश' बन गई है। क्योंकि इन फिल्मों में जिस भाषा का प्रयोग हो रहा है, वह हिन्दी और अंग्रेजी का सम्मिश्रण है। फिल्मों में बोलचाल की एक नवीन भाषा का उदय हुआ है जो कि लोकप्रिय हो रहा है। सिनेमा, संस्कृति का निर्माण भी साबित हो रहा है। यह एक नई संस्कृति को समाज में उतार रहा है।

मौजूदा दौर में साहित्य और संस्कृति दोनों का बाजारीकरण हो चुका है। आज, साहित्य और संस्कृति एक बड़े उद्योग में परिवर्तित हो चुके हैं– इसका श्रेय सिनेमा को जाता है। साहित्य और संस्कृति का सरोकार अब सिर्फ समाज या सामाजिकता तक ही सीमित नहीं रह गया है। इसने आर्थिक पक्ष को भी मजबूती के साथ पकड़ लिया है। अनेक साहित्यिक रचनाओं तथा धार्मिक ग्रन्थों पर बनने वाली फिल्में इसका प्रमाण हैं। सिनेमा के पर्दे पर दिखाई जाने वाली विज्ञापन फिल्में भी बाज़ारवाद के बढ़ते प्रभाव का परिणाम हैं या यूँ कहा जा सकता है कि बाज़ारवाद को बढ़ा रही हैं। विज्ञापनों को देखने के बाद हमें किसी विशेष ब्रांड के ही कपड़े पहनने की आवश्यकता महसूस होने लगती है या किसी विशेष कम्पनी के जूते पहनना अनिवार्य लगने लगता है।

वर्तमान युग के सिनेमा में महिलाओं को जिस तरह दिखाया जा रहा है, वह एक चिन्तनीय मुद्दा है। महिलाओं की पारम्परिक छवि को चोट पहुँचाते हुए उन्हें सिर्फ व्यवसाय में नफा और नुकसान पहुँचाने वाले एक उपकरण के रूप में देखा जा रहा है। क्या हमारी संस्कृति, विशेषकर भारतीय संस्कृति में इसकी इजाज़त है? जहाँ की संस्कृति में नारी केवल श्रद्धा और पूजा की पात्र है, वहाँ उसे सिर्फ आर्थिक–लाभ और विकृत मनोरंजन के लिए बाज़ार में उस तरह उतारा जा रहा है, जिस तरह नहीं उतारा जाना चाहिए। व्यावसायिक फिल्मकारों पर 'गोदार' ने अपना क्षोभ और विरोध जताते हुए कहा–"हम तुम्हें कभी माफ नहीं करेंगे, क्योंकि तुमने युवतियों को उस तरह कभी नहीं फिल्माया, जिस तरह हम उन्हें प्यार करते थे, या युवकों को, जिस तरह उन्हें रोज देखते थे, या अभिभावकों को, जिस तरह हम उनकी अवमानना या आदर करते थे, या बच्चों को जिस तरह वे हमें विस्मित कर देते थे या उदासीन छोड़ देते थे।"[3]

आधुनिक युग में सिनेमा, साहित्य और संस्कृति एक–दूसरे के पूरक हैं। सिनेमा और साहित्य, समाज के दिशा–निर्देश में अग्रणी भूमिका रखते हैं। यह नितांत आवश्यक है कि सिनेमा अपने दायित्व को समझते हुए सार्थक और शिक्षाप्रद फिल्मों का निर्माण करें, जिससे हमारा समाज विशेषकर बच्चे और युवा लाभान्वित हों और उन्हें सही मार्ग–बोध हो।

संदर्भ :

1. भारतीय सिनेमा ..... एक अनन्त यात्रा, प्रसून सिन्हा, पृ0सं. 15
2. भारतीय सिनेमा ..... एक अनन्त यात्रा, प्रसून सिन्हा, पृ0सं. 19
3. द्रष्टव्य–गोदार, गोदार ऑन गोदार (भारतीय सिने–सिद्धान्त, –डॉ0 अनुपम ओझा), में उद्धत, पृ0सं. 127

***